अध्याय चार

दलित स्त्री प्रतिरोध - चुनी हुई कहानियों के सन्दर्भ में

अपसंस्कृति हमेशा वर्चस्व का समर्थन करती है। वर्चस्व-केन्द्रित संस्कृति में कमजोरों का विनाश निश्चित है। स्त्रियाँ, दलित, अल्पसंख्यक, सभी इस विलुप्ति के शिकार हैं। वे असुरक्षित वातावरण में जीने को अभिशप्त हैं। आधुनिक दलित कहानियाँ इस अभिशप्त स्थिति को तो रेखांकित करती ही हैं, साथ ही इसके विरुद्ध रचनात्मक प्रतिरोध को भी दर्ज करती हैं। अमानवीय व्यवस्थाओं के ख़िलाफ़ लिखी कहानियाँ प्रभुत्वशाली सामाजिक व्यवस्था की मान्यताओं को ख़ारिज करती हैं। इस संदर्भ में दलित महिलाओं की प्रतिरोध कहानियों का संदर्भ बहुत प्रासंगिक है। क्योंकि हमारे समाज में स्त्रियों को हमेशा पुरुष प्रधान व्यवस्था द्वारा परिभाषित किया गया है। मेंटरशिप कभी भी स्त्रियों को उनकी वास्तविक पहचान में खुद को अभिव्यक्त करने की अनुमति नहीं देती है। दलित महिलाओं की प्रतिरोध की कहानियाँ इस विसंगति के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध प्रदर्शित करती हैं। इन कहानियों का उद्देश्य महिलाओं को पुरुष वर्चस्व द्वारा निर्मित मान्यताओं से मुक्त कर उनकी पहचान विकसित करना है। आज की दलित स्त्रियाँ अपने स्वाभिमान और अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। आज स्त्रियाँ सिर्फ परिवार तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि कई क्षेत्रों में अपना वर्चस्व स्थापित करने में आगे बढ़ रही हैं। लेकिन अधिकतर देखने को मिलता है कि वे हर क्षेत्र में किसी न किसी तरह के दबाव या शोषण का शिकार होते हैं। आज दलित महिलाओं में इन शोषणों से मुक्ति पाने और अपने अधिकार पाने के लिए प्रतिरोध का स्वरूप दिखाई देने लगे है। साहित्यकार आज कहानियों के माध्यम से दलितों, दलित स्त्रियों, आदिवासियों आदि के उभरते सामाजिक पहलुओं, उनसे जुड़ी समस्याओं और उनकी वर्तमान स्थिति से हमें अवगत कराते हैं। प्रस्तुत अध्याय का लक्ष्य इन्ही महत्वपूर्ण सामाजिक पक्षों पर कहानियों के

माध्यम से विचार-विमर्श करना है, इनसे जुडी विभिन्न परिस्थितियों में प्रतिफलित होते प्रतिरोध की समकालीन आवश्यकता को समझना है।

4.1 प्रतिरोध का ऐतिहासिक परिदृश्य

इतिहास में मानव सभ्यता का बहुत महत्व है और यह इतिहास करीब पांच हजार साल पुराना है। इस लम्बे कालखंड में इतिहास अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरा है। इस काल में हमने सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं और ढांचों में कई बदलाव देखे हैं। परिवर्तन के नये दौर में ही प्रतिरोध के नये रूप और उसमें अनेक परिवर्तन देखने को मिले। आधुनिक समय से पहले भी संस्कृति के विकास में प्रतिरोध की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव सभ्यता का इतिहास इस बात का गवाह है कि प्रतिरोध की संस्कृति उतनी ही पुरानी है जितनी कि सत्ता या प्रभुत्व की संस्कृति। प्रभुत्व और प्रतिरोध के बीच बढ़ता अंतर्संबंध सामाजिक संरचना और प्रतिरोध पर सत्ता के प्रभुत्व की नींव बनकर उभरा।

भारत में उत्तरवैदिक काल में जब धार्मिक पुरोहितों ने धर्म को कर्मकाण्डों से जोड़कर उसे सीमित कर दिया तो आम जनता उनकी पुरोहिती से क्रोधित होने लगी और एक वर्ग के पास बहुत अधिक शक्ति एकत्रित हो गयी। अत: ईसा पूर्व 1000-500 के बीच संचित सत्ता के प्रतिरोध में बौद्ध धर्म और जैन धर्म तथा अन्य संप्रदायों का जन्म हुआ। गौतम बुद्ध और महावीर जैन ने स्थापित सत्ता के प्रतिरोध में कदम उठाये। "मध्ययुगीन सामंती व्यवस्था और औपनिवेशिक शासन के दौर में प्रतिरोध की संस्कृति की उपस्थिति यह दर्शाती है कि काल और व्यवस्था कैसी भी रहे, मनुष्य में प्रतिवाद, प्रतिरोध, संघर्ष और बेहतर स्थिति के लिए परिवर्तन की इच्छा शक्ति हमेशा रहती है। इस परिप्रेक्ष्य में गौतम बुद्ध के 'महान त्याग' और ईसा मसीह के 'आत्मपीड़न' को देखा जा सकता है जो कि तत्कालीन सामाजिक स्थितियों के विरुद्ध 'महा वैयक्तिक प्रतिरोध' और परिवर्तन के पक्ष में उठाए गए कदम थे। इसी परिपाटी में पैगम्बर मुहम्मद को भी रखा जा सकता है। तीनों के अपने - अपने

प्रतिरोध की शैलियाँ थी - जहाँ बुद्ध व ईसा त्याग, करुणा, दया, प्रेम, आत्मपीड़ा और आत्मोत्सर्ग के माध्यम से अपने समय के समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे वही मुहम्मद साहब सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से समाज परिवर्तन व व्यवस्था परिवर्तन के हिमायती थे। तीनों ने अपने-अपने समय के समाजो की चुनौतियों को ध्यान में रखकर ही 'रेस्पोंस' दिए थे"।[1]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर और प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकारों ने भी अपने समय की परिस्थितियों के अनुरूप प्रतिरोधी कदम उठाये थे। कबीरदास ने अपने समय में मौजूद राजनीतिक, धार्मिक और सांप्रदायिक कट्टरता पर सवाल उठाकर आम लोगों को जागृत करने का प्रयास किया। प्रेमचंद ने किसानों, दलितों, मजदूरों और आम गरीबों के पक्षधर रहते हुए पूंजीवादी और सामंती व्यवस्था से उत्पन्न अन्यायों के खिलाफ उनकी रचनात्मकता को मजबूत कर जनता में प्रतिरोध चेतना का अलख जगाया था। आधुनिक काल के बाद उत्तर-आधुनिक काल में प्रभुत्व के स्वरूप में परिवर्तन आये और इसके परिणामस्वरूप, अधिकार केवल राजनीतिक स्तर तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि सामाजिक वर्ग, प्रभुत्व, बाज़ार, ज्ञान, धन, धर्म के नैतिक दबाव, संस्कृति और संगठनों के सामाजिक प्रभाव में भी परिलक्षित हुए। इस प्रकार प्रतिरोध की परंपरा ने एक नया मोड़ ले लिया।

4.1.1 आधुनिकता में नई पीढ़ी का प्रतिरोध

आधुनिकतावाद कला, वास्तुकला, संगीत, साहित्य और व्यावहारिक कलाओं में सांस्कृतिक आंदोलनों की एक श्रृंखला को संदर्भित करता है जो प्रथम विश्व युद्ध से लगभग तीन दशक पहले उभरी थी। परिवर्तन और वर्तमान को अपनाते हुए, आधुनिकतावाद में उन विचारकों के कार्यों को शामिल किया जा सकता है जिन्होंने उन्नीसवीं सदी की शैक्षणिक परंपराओं का विरोध किया था। उनका मानना था कि कला, वास्तुकला, साहित्य, धार्मिक विश्वास, सामाजिक संगठन और दैनिक जीवन के पारंपरिक तरीके अब अप्रचलित हो गए हैं।

आधुनिक विचारकों का उभरते पूर्ण औद्योगीकृत समाज के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से सीधा सामना हुआ। आधुनिकता उत्तर-पारंपरिक और मध्ययुगीन ऐतिहासिक काल है जिसमें दुनिया की कई संस्कृतियाँ सामंतवाद से पूंजीवाद, उद्योगवाद, तर्कवाद और बड़े पैमाने पर धर्मनिरपेक्षता की ओर बढ़ीं। साहित्य व्यक्तिवाद पर आधारित हो गया और परम सत्य की अवधारणा विफल हो गई। जितने अधिक लोग थे, सत्य के उतने ही अधिक सिद्धांत उत्पन्न हुए।

मनुष्य द्वारा अपने स्वाभाविक एवं अर्जित अस्तित्व के स्वाभाविक विकास में उत्पन्न किये गये अवरोध के प्रति विरोध को प्रतिरोध कहा जाता है। जीवन की यह प्रक्रिया सभ्यता के विकास के लिए प्राणशक्ति की तरह है। इसलिए प्रतिरोध कोई नई अवधारणा न होते हुए भी समय के संदर्भ में यह अनिवार्य रूप से नए रूप धारण कर लेता है। नई पीढ़ी के प्रतिरोध की दिशाएँ बहुआयामी हैं। वर्तमान सामाजिक अलगाववाद ने युवा प्रतिरोध के लिए कई दरवाजे खोल दिए हैं। युवाओं को नियंत्रित एवं दिशा देने का कार्य सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय वातावरण करता है। अंतर्राष्ट्रीय परिवेश भी इसे बाह्य स्पर्श प्रदान करता है। आज की युवा पीढ़ी जातिगत भेदभाव, छुआछूत, अस्पृश्यता आदि को नकारती है। दलित महिलाएं दलित न रहकर इंसान बनकर जीने का प्रतिरोध कर रही हैं। युवा पीढ़ी अपने सांस्कृतिक और जीवन मूल्यों को समझते है और उनके प्रति सचेत भी है। जब वे सदमे में होते हैं तो उनका सात्विक क्रोध और प्रतिरोध व्यक्त होता है, क्योंकि वे अपनी अस्मिता की पहचान बनाए रखने में ही सार्थकता तलाशते हैं। आज की युवा पीढ़ी पारंपरिक मूल्यों, अंधविश्वासों आदि पर विश्वास नहीं करती। वे अपने दम पर खड़े हैं और पारंपरिक रीति-रिवाजों और बुराइयों का विरोध कर रहे हैं।

4.1.2 प्रतिरोध के विभिन्न परिवेश साहित्य के संदर्भ में

प्रतिरोध सामाजिक अन्याय के विरुद्ध परिवर्तन की राजनीति का वैचारिक पहलू है। प्रतिरोध को साहित्य की दृष्टि से विमर्श कहा जा सकता है। साहित्य में प्रतिरोध शब्द का

प्रयोग सबसे पहले 1996 में बारबरा हालों ने फिलिस्तीनी लेखक गासन कानाफासी पर 'अधिकृत फिलिस्तीन में प्रतिरोध का साहित्यः1948-1966 ' शीर्षक वाले शोध पत्र में किया था। अनुराधा सिंह ने अपनी पुस्तक 'ल्हासा का लहू' में बारबरा हालों के विचार का उल्लेख किया है। बारबरा हालों लिखते है - "कानाफासी कहते है कि शोध तभी संभव है, जब शोधकर्ता स्वयं उस प्रतिरोध के आन्दोलन का एक हिस्सा हो। वह आन्दोलन जो अधिकृत भूमि पर उठा हो। इसलिए प्रतिरोध का सही आकलन के लिए अंदर का अवलोकन आवश्यक है क्योंकि भीतर से किया गया यह सामूहिक संघर्ष किसी न किसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित होता है। अतः इतिहास लेखन का उपयोग प्रतिरोध की वास्तविक भावना को ग्रहण करने के लिए करना चाहिए, क्योंकि दमनकारी ताकतें हमारी जिन वस्तुओं को अमान्य घोषित करती है, उसमें से एक इतिहास है"।[2] प्रतिरोध की अस्मिता के लिए इतिहास पर दृष्टि डालना जरूरी है, तभी वर्तमान का मूल्यांकन हो सकता है। वर्तमान साहित्य अस्मिता का साहित्य है। दलित, आदिवासी, ट्रांसजेंडर और स्त्रियों की अस्मिता आज के साहित्य की सोच के केंद्र में है और जहां भी अस्मिता की बात होगी, उसकी रक्षा के लिए प्रतिरोध के स्वर भी जन्म लेंगे। साहित्य और प्रतिरोध के संबंध पर विचार करते हुए प्रगति सक्सेना लिखते है - "प्रतिरोध साहित्य का अभिन्न अंग है। वह उसका एक अविभाज्य हिस्सा है"।[3] वह स्पष्ट करते हैं कि साहित्य में जन्मा प्रतिरोध सत्य से प्रेरित होता है और यह प्रतिरोध सत्ता के विरुद्ध होता है, जिसका उद्देश्य सभी प्रकार के अन्याय, दमन और दमन के विरुद्ध खड़ा होना होता है।

आज वर्ग की जगह अस्मिता और संघर्ष की जगह प्रतिरोध की शब्दावली ने ले लिया है। "अभी बीते कल तक सामाजिक परिवर्तन की साहित्य चर्चा-परिचर्चा में बहुतायत से प्रचलित, प्रयुक्त और प्रिय शब्द थे वर्ग और संघर्ष, आज उनकी जगह उसी बहुतायत के साथ अस्मिता और प्रतिरोध ने ले ली है"।[4] यह केवल शब्द का परिवर्तन नहीं है, कोई भी

शब्द उस जाति या प्रकार का होते हुए भी किसी दूसरे शब्द का शत-प्रतिशत पर्याय नहीं होता, वह अपने साथ कोई अन्य दृष्टिकोण, कोई अन्य पद्धति, मत या मतभेद लेकर आता है। प्रतिरोध शब्द अब केवल एक शब्द नहीं रह गया है बल्कि प्रतिक्रिया स्वरूप परिणित हो रहा है और आधुनिक साहित्य इसका साक्षी है। समाज में उत्पन्न होने वाले संघर्षों और समस्याओं का सामना प्रतिरोध के माध्यम से किया जाता है। प्रतिरोध का लक्ष्य असमानता को कम करना और सशक्तिकरण के माध्यम से समानता की स्थापना करना है और यह सह-अस्तित्व के प्रति जागरूक, सचेत प्रतिरोध का एक कठिन और जटिल जीवन जीने का तरीका है। प्रतिरोध के साहित्य ने अपनी विशिष्ट पहचान विकसित की है क्योंकि वह एक प्रतिक्रिया सबके पास होती है। "विमर्श में हमेशा शक्ति और ज्ञान का गठबन्धन सक्रिय रहता है और किसी समाज को प्रबन्धनीय और शासनीय बनाता है। शक्ति अन्ततः प्रतिरोध को जन्म देती है लेकिन केवल उसे उदरस्थ करने और अधिक प्रभावी रूपों में स्वयं को पुनरुत्पादित करने के लिए। क्योंकि विमर्श प्रतिरोध करने वाले की चेतना और प्रतिरोध की पद्धति तक का पूर्व निर्धारण कर देता है। यानि प्रतिरोध अपने कवच को और मज़बूत बनाने के लिए की गई स्वयं शक्ति की ही एक कार्यवाही है"।[5] विमर्श के लिए साहित्य का मूल्य परिवर्तन और प्रतिरोध की क्षमता से निर्धारित होता है, न कि उसकी साहित्यिक सुंदरता और शिल्प कौशल से। समसामयिक सन्दर्भ के अनुसार साहित्यिक प्रतिरोध की मान्यताएँ बदल गयी हैं, प्रतिरोध का स्वरूप बदल गया है। प्रतिरोध की आवाजों के उभरने में साहित्य के कई पहलुओं की भूमिका अहम साबित हो रही है। आधुनिक हिन्दी साहित्य अपने समय की समस्याओं एवं चुनौतियों से संघर्ष कर अपने सामाजिक सरोकारों को सिद्ध करने वाला साहित्य है। मनुष्य को अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की स्थापना के लिए प्रतिरोध का मार्ग स्वीकार करना होगा। इस प्रतिरोध में उसे 'स्व' से ऊपर उठकर समग्रता पर जोर देना होगा, तभी जीवन में गतिशीलता आएगी और मूल्य सृजन संभव होगा। डॉ. प्रभाकरन हेब्बार

इल्लत्त ने लिखा है - "यदि मानव प्रतिरोध का रास्ता नहीं अपनाएगा तो जीवन के उच्चतम मूल्यों को अभ्यंतरीकृत करना असंभव भी हो जाएगा"।[6]

पूंजी की सभ्यता ने मानव जीवन में धन को प्रधानता दी है और यही तर्क है कि आज यह मानव को विकास और अधिक धन कमाने के लिए पारिस्थितिक दोहन और शोषण की ओर मोड़ रही है। साहित्य आज इस पूंजीवादी सभ्यता के प्रतिरोध में खड़ा है। आज समाज की दहलीज पर समानता और सम्मान के लिए दलित वर्ग सबसे अधिक संघर्ष करता नजर आ रहा है। आदिवासी लोग भी अपनी जमीन से विस्थापित होते दिख रहे हैं। प्रकृति का शोषण आदिवासियों के शोषण से जुड़ा है। समाज की मुख्य धारा में रहते हुए भी आदिवासियों को सत्ता, शोषण, पहचान की स्थापना आदि के लिए संघर्ष और प्रतिरोध करना पड़ता है। संविधान से सभी अधिकार मिलने के बावजूद भी उन्हें सत्ता और व्यवस्था, जाति व्यवस्था, महिला शोषण के खिलाफ आवाज उठानी पड़ती है। प्रतिरोध और प्रतिशोध का अर्थ दलित साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

अतः यह स्पष्ट है कि साहित्य का मुख्य स्वर प्रतिरोध है, प्रतिरोध के साहित्य का उद्देश्य समाज में घटित घटनाओं को ढंकना नहीं बल्कि उन्हें समय और समाज के अनुरूप अभिव्यक्त करना है। साहित्य भविष्योन्मुखी होता है और भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान की विसंगतियों की वास्तविकता से अवगत होना और भविष्य के प्रति सजग होना तथा समाज की बदलती दशा की दिशा पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। साहित्य का प्रतिरोध इसी उद्देश्य से प्रेरित होता है

4.1.3 स्त्री का प्रतिरोधः स्त्री का प्रतिरोधःइतिहास के आइने में

आज के दौर में स्त्रियाँ भारत में यौन हमलों का विरोध कर रही हैं और सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक मानदंडों में बदलाव के लिए आंदोलन कर रही हैं। स्त्रियों के मुखर और अभिनव प्रतिरोध में धरना-प्रदर्शन, मार्च, रैलियां, मोमबत्ती की रोशनी में जुलूस,

नुक्कड़ नाटक, प्रस्तुतियां, विज्ञापन अभियान, फ्रीज़ मॉब और सोशल मीडिया जैसी रणनीतियां शामिल हैं। भारतीय स्त्रियों की चल रही सक्रियता सार्वजनिक जागरूकता पैदा कर रही है, राष्ट्रीय कानूनों में बदलाव कर रही है और पितृसत्तात्मक और पुरुष-प्रधान सामाजिक प्रणालियों की जांच कर रही है।

बीसवीं सदी में बुद्धिवाद चिंतन के केंद्र में आ गया। यहीं पर पारंपरिक संस्थानों को जबरदस्त चुनौतियां मिलीं। इस पूरे कालखंड का समाज के सभी वर्गों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस भारी उथल-पुथल से महिलाएं भी अछूती नहीं रहीं। महिलाओं के अधिकारों का सवाल भी तभी से उठने लगा। मेरी वुलस्टण, क्राफ्ट, वर्जीनिया वूल्फ, सिमोन द बोउवर, बेट्टी फ्रीडन, केट मिल्लर आदि नारीवादियों ने महिलाओं की स्थिति पर गहरा असंतोष व्यक्त किया। मैरी वूलस्टन क्रॉस ने अपनी पुस्तक 'ए विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमेन' में इस बात को मानने से इनकार कर दिया कि बुद्धि के मामले में स्त्रियाँ पुरुषों से कमतर हैं। उनके अनुसार, स्त्रियाँ केवल पुरुषों के आनंद की वस्तु नहीं हैं बल्कि एक स्वतंत्र इंसान हैं जो बौद्धिक शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम और हकदार हैं। फ्रांसीसी लेखिका और दार्शनिक सिमोन द बोउवर ने अपनी किताब 'सेकेंड सेक्स' में माना है कि औरत पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है। इसमें नारी जीवन के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, जैविक आदि सभी पहलुओं पर गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया। फ्रीडन ने अपनी पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टिक' में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी महिलाओं की स्थिति पर गहरा असंतोष व्यक्त किया है। फ़्रीडन को पारंपरिक नैतिकता की गहरी समझ थी। अपनी पुस्तक के माध्यम से, फ्रीडन ने अमेरिकी समाज में लैंगिक समानता के झूठे पहलू को उजागर किया। महिलाओं की आर्थिक आजादी पर जोर दिया। आधुनिक विद्रोही नारीवादियों ने महिलाओं की गुलामी के लिए भौतिक वास्तविकता के बजाय संस्कृति के तत्वों को जिम्मेदार ठहराया। स्त्रियों पर अत्याचार का आधार पर शारीरिक प्रभुत्व नहीं है, बल्कि संस्कृति, धर्म, भाषा, ज्ञान पर पुरुष

का नियंत्रण है। महिलाएं अच्छा सोचती हैं और अच्छा व्यवहार करती हैं। पुरुषों के लिए यह एक अच्छा विकल्प है कि वे कभी भी महिलाओं की भावनाओं को यथार्थ रूप से व्यक्त न करें। इसलिए पुरुषों द्वारा लिखा गया सारा साहित्य और वर्तमान सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक जीवन पुरुष दृष्टिकोण से भरा हुआ है। जिस प्रकार भारत में दलित साहित्यकारों ने यह दावा करती हैं कि केवल एक दलित लेखक ही दलित जीवन के यथार्थ को व्यस्त कर सकती है, उसी प्रकार इन पश्चिमी नारीवादियों का कहना है कि केवल महिलाएं ही स्त्री जीवन की सच्चाई को व्यक्त कर सकती हैं और वह भी तभी जब वे पुरुष प्रधान समाज द्वारा थोपी गई नैतिकता, संस्कार और भाषा से स्वयं को पूरी तरह मुक्त कर लें। महिला आंदोलनों द्वारा चित्रित नारी अस्तित्व की संकल्पना को सर्वमान्य नहीं किया जा सका, तथापि नारी मुक्ति के संबंध में इससे जो भी निष्कर्ष निकले वे अवश्य ही मौलिक थे। इन प्रस्तुतियों से महिलाओं का अस्तित्व अधिक फोकस में आने लगा। लेकिन महिलाओं के प्रतिरोध को सामाजिक व्यवस्था से अलग करके देखने का उनका तरीका कई लोगों को खतरा लगने लगा। लेकिन इन आंदोलनों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इन आंदोलनों के माध्यम से महिलाओं का अस्तित्व केंद्र में आने लगा। और नारी के अस्तित्व से जुड़ी पारंपरिक अवधारणाएं हिल गईं।

4.1.4 दलित स्त्री प्रतिरोध और साहित्य जगत

दलित साहित्य वह साहित्य है जो शोषितों की पीड़ा को स्वर देता है। यह कहा जा सकता है कि दलित साहित्य मनुष्य को उचित क्रांति की ओर ले जाता है और मनुष्य को समानता सिखाता है। दलित साहित्य मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा नहीं बढ़ाता बल्कि मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रेम बढ़ाता है। समानता का यह पाठ जिस साहित्य के माध्यम से पढ़ाया जाता है, वह दलित साहित्य है। दलित साहित्य की बात करें तो उसमें दलित स्त्रियों को सबसे ज्यादा यातनाओं और दर्द सहना पड़ता है। दलित स्त्रियों के खिलाफ

उत्पीड़न, बलात्कार, तिरस्कार और उत्पीड़न की हजारों घटनाओं के पीछे उनका दलित होना एक बड़ा कारण है क्योंकि उनके प्रति उच्च जाति समाज की धारणा और व्यवहार आज भी ब्राह्मणवादी परंपरा से त्रस्त है। इसलिए दलित स्त्रियों सबसे अधिक प्रतिरोध और विरोध करती हैं। साहित्य के माध्यम से नारी की अस्मिता को पहचानने का प्रयास शुरू हो गया है। दलित महिलाओं के व्यक्तित्व को पहचानने के लिए आंदोलन हो रहे हैं। इस पूरे संघर्ष का एकमात्र मुख्य उद्देश्य दलित महिलाओं के लिए सुखद भविष्य का निर्माण करना है। दलित महिलाएँ अब अपनी पहचान स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही हैं। साहित्यकारों और समाज सुधारकों ने यह मान लिया था कि महिलाओं को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए उन्हें शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य है। स्त्री मुक्ति के लिए किये जा रहे व्यापक प्रयासों का प्रभाव साहित्य पर भी दिखाई दे रहा है। "सभी भाषाओं के साहित्य में समय-समय पर जो मौलिक विचार व्यक्त होते रहे है उनमें स्त्री मुक्ति एवं उनकी विभिन्न समस्याओं को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। हिन्दी के कई साहित्यकारों ने आरंभ में स्त्री अन्याय-अत्याचार को सहन कर रही है उनको अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया"।[7] आज भी वे घर, परिवार और समाज में शोषण से मुक्त नहीं हैं। जब ज्ञान के प्रसार ने महिलाओं को स्वतंत्रता और आत्म-चेतना के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया, तो पारिवारिक-सामाजिक शोषण के खिलाफ आवाजें उठने लगीं। आज उनकी गूँज साहित्य में भी सुनाई दे रही है।

4.2 दलित स्त्री एवं प्रतिरोध -सामाजिक परिप्रेक्ष्य

आधुनिक समय में साहित्य अपना प्रकृति बदल रहा है और प्रतिरोध के माध्यम से सामाजिक यथार्थ की बुनियादी कसौटियों को समाज तक पहुंचा रहा है। यह लोगों को जागरूक कर रहा है क्योंकि आज प्रतिरोध समाज की वास्तविकता है। दलित साहित्यकार सामाजिक परिवर्तन पर जोर देते हैं। हिन्दू धर्म में सामाजिक असमानता की उत्पत्ति जाति

व्यवस्था में निहित है। ऊंची जातियां खुद को ऊंची जाति मानकर शूद्रों और अतिशूद्रों पर अन्याय और अत्याचार करती रही हैं। उच्च जाति समुदायों ने न तो दलितों को पीने का पानी उपलब्ध कराया और न ही उन्हें अपने साथ रहने और सोने की अनुमति दी। आधुनिक कहानियों में दलित महिलाओं की क्षमताओं की पहचान एक प्रमुख विशेषता के रूप में उभरी है। इस काल की कहानियों में स्त्रियों की मानवीय भावनाओं और मानवीय दृष्टि का चित्रण भी अधिक हुआ है। स्त्री मन की सूक्ष्म और प्रामाणिक अभिव्यक्ति दलित महिलाओं पर केंद्रित कहानियों को एक विशेष पहचान देती है। स्त्रियों के विशिष्ट अनुभवों को सामाजिक यथार्थ के आधार पर उनकी प्रामाणिकता के साथ व्यक्त किया गया है।

हेमलता महिश्वर जी की कहानी **'कर का मन का डरिके'** में जाति व्यवस्था से संबंधित शिक्षित लोगों की मानसिक संरचना को चित्रित किया गया है। यहां परिवार परामर्श कार्यशाला में एक महिला स्त्री रोग विशेषज्ञ, एक महिला वकील और समाज में उन्नत स्थिति वाली एक महिला मनोचिकित्सक भाग लेती हैं। वहां परामर्शदाता अपने अनुभवों के माध्यम से भाषण देते हैं। कार्यशाला के अंत में, सभी लोग चाय पीते समय, एक परामर्शदाता साधना जी सुवर्णा महेसकर का पता पूछते हैं। डायरी में उनकी नाम सुवर्णा महेसकर देखकर साधना जी चौंक गईं और पूछा- "महेसकर! यानी महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण...तभी तो बड़ी वैचारिकता है आपमें..."।[8]

"नहीं... मैं ब्राह्मण नहीं..." ।[9]

"तो..." ।[10]

साधना जी ने संकोच भाव से पूछा और सुवर्णा महेसकर ने दृढ़ स्वर में कहा- "मैं शिड्यूलकास्ट को बिलांग करती हूँ..."।[11]

यह सुनते ही साधना जी ने सुवर्णा महेसकर के हाथ से अपनी डायरी ले ली और सुवर्णा जी के सामने बैठी वकील साहिबा के पास जाकर बैठ गईं। यहां वह अपनी भाषण शैली से

हर किसी के दिल को छू सकती हैं। और एक तरह से अपनी जाति बताकर दूसरों के मन में व्याप्त चिंताओं का प्रतिरोध किया है। मानव जाति चाहे कितनी भी आगे बढ़ गयी हो या शिक्षित हो गयी हो, समाज से जातिवाद ख़त्म नहीं हुआ है।

4.2.1 पारिवारिक ढाँचे के खिलाफ प्रतिरोध

पारिवारिक संरचना सामाजिक बुनियाद को मजबूत और सहारा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वैश्वीकरण के बाद विकास के नाम पर जो नई पारिवारिक संरचना उभरी है, उसने परिवार में बच्चों, युवाओं, बुजुर्गों और महिलाओं सभी को आत्मकेंद्रित बना दिया है। परिणामस्वरूप, पारिवारिक रिश्तों की गर्माहट फीकी पड़ने लगी, अकेलापन और अलगाव बढ़ने लगा और महिलाओं का लेखन संघर्षों को उजागर करने और असंवेदनशील पारिवारिक संरचना के प्रतिरोध का दस्तावेजीकरण करने का विषय बन गया। स्त्री-पुरुष के आपसी प्रेम और सौहार्द से परिवार आगे बढ़ता है। परिवार की योजना बनाने और उसे संतुष्ट रखने में महिलाओं की बड़ी भूमिका होती है। यदि किसी दलित स्त्री पर पारिवारिक ढाँचा अपना शिकंजा कसता है या शोषण या मनोवैज्ञानिक दबाव बढ़ता है तो दलित स्त्रियाँ इसके खिलाफ आवाज उठाती है। महिलाएं आज अपने खिलाफ होने वाले शोषण से लड़ने और उसका विरोध करने में सक्षम हो रही हैं। क्षमा शर्मा की राय में "महिलाओं की आवाज़ बढ़ रही है। उनकी आवाज़ को मज़बूति प्रदान करने में महिला संगठनों, शिक्षा, संस्थाओं, स्वयं सेवी संस्थाओं, बुध्दिजीवियों तथा मीडिया का बहुत बडा हाथ है। कहना तो यह चाहिए कि मीडिया ने स्त्री को साहस और नई वाणी प्रदान की है। इसलिए आज पीडित स्त्री अपने को छिपाने की कोशिष नहीं करती। न वह समाज और लाछनों से डरती है। क्योंकि अब तक चाहे अपराध किसी का हो, स्त्री ही डरती और लांछित होती रही है। बल्कि शिकायत न करके मृत्यु का वरण करने वाली स्त्री को बहुत आदर्श रूप में पेश किया जाता रहा है। लेकिन आज हम नई स्त्री देख रहे है। वह भेदभाव सहने को तैयार नहीं है"।[12]

कुसुम मेघवाल की '**अंगारा**' कहानी में जमना को सुमेर सिंह और उसका चाचा नत्थू सिंह ने पकड़कर ले जाकर बलात्काक करते है। वहाँ से बचकर घर वापस आयी तो घर में कोई उसका साथ नहीं देती है सब लोग उसे ही दोषी मानते है। खबर सुनते ही उसके घर पर मौजूद लोगों ने तरह-तरह की बातें कहने लगी।

"छिनाल कैसी कूदती फिरती थी अपनी जवानी बताने को" ।[13]

"पता नहीं किन-किन के साथ मूँह काला करके आई है" ।[14]

"हरखू और झमकू को कहते कि अपनी बिटिया को सँभालकर रखो तो उल्टे हमारा ही मूँह बन्द करते कि मेरी लड़की तुम्हारी आँखों में क्यों चुभ रही है" ।[15]

"अब भूगतो, कौन करेगा शादी इस छिनाल से" ।[16]

यह सब सुनने की बजाय, उसके परिवार के पास कुछ भी करने के लिए नहीं था। उन्होंने उसका साथ नहीं दिया। वह बेहद दुखी, अपमानित, टूटी हुई थी। लेकिन जमना अपने भाई के सहयोग से सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक को काटकर विरोध करती है।

पूरन सिंह की कहानी **अरथी** एक दलित माता-पिता के दर्द को प्रतिबिंबित करती है। इस कहानी में बद्री और गंगादेई अपने दो बच्चों को पढ़ाने के लिए दिन-रात मेहनत करते है। "धीरे धीरे दोनों बेटे इंटरमीडिएट और बी.एस.सी करते हुए न जाने कहाँ पहूँच गये थे और बद्री ने मेहनत करने में ज़मीन-आसमान एक कर दिये थे। बद्री बहुत कड़ी मेहनत करता था। दिन में राजगीरि, रात में रईसों के घरों में रंगरोगन और गंगादेई दिन में खेतों में लकडियाँ बीनती, किसानों की फ़सल काटती। बदले में अनाज दाल-चावल, सब्जी ले आती थी। दोनों युध्द लड़ रहे थे और आखिरकार विजय ने उन दोनों के कदम चूम ही लिए थे। दिवारी ओ.एन.जी.सी में वैज्ञानिक नियुक्त हुआ तो राजबीर भाभा परमाणु अनुसंधान कन्द्र में इंजीनियर"।[17]

जब उनके पति की मृत्यु हो गई, तो बच्चे अंतिम संस्कार करने आए, तब गंगादेई ने उनसे कहा कि-- "तुम में से जाइ जादो परेशानी होय बा मेरे आदिमी की अर्थी के साथ न जाये। उनकी चिता को अग्नि तो मैं ही देऊगी। रही बात बेद-पुरान की तो जे पुरान सिर्फ मेरे लेई है? इन दोनों के ले नाई?"।[18] जब गंगादेई ने पूरे गांव के सामने अपने विचार व्यक्त किये तो लोग दंग रह गये और दोनों बेटे एक दूसरे का मुंह ताकते रह गये। यहां माँ के प्रतिरोध स्वरूप को दर्शाया गया है।

4.2.2 व्यवस्था और शोषण का प्रतिरोध

यदि हम सामाजिक परिवेश का बारीकी से निरीक्षण करें तो यह दिखाई देता है कि आज भी निम्न वर्ग अत्यधिक दबाव और परिस्थितियों की पकड़ से गुजर रहे है। खासकर महिलाओं को ज्यादा दिक्कत हो रही है। राज्य की विभिन्न व्यवस्थाओं एवं विकास कार्यक्रमों के बावजूद भी महिलाओं को पारिवारिक वातावरण को संभालने में बड़ी कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। उन्हें शोषण, उत्पीड़न, तिरस्कार आदि का सामना करना पड़ता है। इन सभी समस्याओं के बावजूद वे कड़ी मेहनत, विद्रोह और प्रतिरोध से समाज में अपनी स्थिति स्थापित करने की पूरी कोशिश करती हैं। किसी भी परिस्थिति या समस्या के बीच ये मजबूत बनकर उसका मुकाबला करती हैं। यह आज के निम्न वर्ग की महिलाओं की विशिष्टता सामने आ रही है।

दीपा की सशक्त कहानी **'जीत'** में सिपाही भर्ती परीक्षा के शारीरिक परीक्षण के दौरान हेड इंस्पेक्टर ने शौचालय साफ़ करने के कहने पर वह मना कर देती है तो परीक्षा परिणाम की सूची में उसका नाम नहीं है। यहाँ रेखा इस तरह से व्यवस्था का विरोध करती है कि - "रेखा ने हौसला दिखाया और अगले ही दिन 'सिपाही भर्ती परीक्षा' के हेड क्वार्टर जाकर लिखित में यह शिकायत की कि जब उसने शारीरिक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया था तो उसका अनुक्रमांग शारीरिक परीक्षा परिणाम की सूची में क्यों नहीं है? इसके अतिरिक्त

उसने शिकायत-पत्र में हेड-निरीक्षक परमानन्द ठाकूर पर सन्देह जताते हुए उसके दुर्व्यवहार के बारें में भी लिखा"।[19]

4.2.3 बलात्कार के ख़िलाफ़ प्रतिरोध

बलात्कार सबसे अमानवीय शारीरिक हिंसा है जो एक महिला के जीवन को दुखद बना देती है। इससे स्त्री का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है और वह व्यक्तित्वहीन हो जाती है। महिलाएं इस हिंसक और पाशविक रवैये का दुष्परिणाम जीवन भर झेलने को मजबूर होती हैं। सदियों से ऊंची जाति के पुरुष दलित महिलाओं को एक देह के रूप में देखते आए हैं। समय बदलने के बाद भी दलित महिलाओं के प्रति नजरिये में कोई बदलाव नहीं आया। समाज के सभी वर्गों की महिलाएँ बलात्कार की शिकार हैं। साम्प्रदायिक हिंसा के कारण स्त्रियों के साथ बलात्कार हमारे समाज की सबसे शर्मनाक प्रवृत्ति है। अरविंद जैन की राय में "बलात्कार सिर्फ एक स्त्री के विरुद्ध अपराध नहीं बल्कि समस्त समाज के विरुद्ध अपराध है। यह स्त्री की संपूर्ण मनोभावना को ध्वस्त कर देता है और उसे भयंकर भावात्मक संकट में धकेलता है, इसलिए बलात्कार सबसे अधिक घृणित अपराध है"।[20]

हमारे समाज में महिलाएं बिल्कुल असुरक्षित हैं। एक दलित महिला उससे भी ज्यादा असुरक्षित है। हर पल उनके साथ गलत हरकतें हो रही हैं। बलात्कार जैसे अपराध का शिकार होने वाली महिला समाज में अपमानित होती है और न्याय से भी वंचित रह जाती है। लेकिन आज महिलाएं अपने ऊपर हो रहे शारीरिक अतिक्रमण का खुलकर विरोध करती हैं।

प्रहलाद चंद दास ने **'कजली'** कहानी में कजली बूढ़े पूरण पंडित और उसके बेटे छोटेलाल से अपना बदला इस तरह लेती है- "पूरण पण्डित की लगभग आधी ज़मीन के लिए कजली ने कचहरी में दावा ही दायर कर दिया है। कजली ने कचहरी में दावा ही दायर नहीं किया, बल्कि दावे को पा भी लिया"।[21]

डॉ. कुसुम वियोगी की कहानी **'अंतिम बयान'** की नायिका अतरों अपनी तरफ होनेवाले शारीरिक अतिक्रमण के प्रति खूलकर प्रतिरोध करती है। उसने कागज़ के बंडल में से राजेन्द्र का कटा हुआ शिशन दिखाता है और सब से बोलती है कि - "गाँव वालों, सुनो। दरोगा को बयान चाहिए तो सुनो मेरा बयाना"।[22]

कुसुम मेघवाल की **'अंगारा'** कहानी में जमना भी अपने को बेआबरू करने वाले को सजा देती है। इस घटना का वर्णन कहानी में इस प्रकार है- "अंगारा बनी जमना दौड़ी-दौड़ी घर में गई और कोने में पड़ी दराती उठा लाई, सरकार और पुलीस जिसे सज़ा नहीं दे पाई, उसे जमना ने दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया। उसने सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर दिया। वह तड़प रहा था। अब उसका बचना सम्भव नहीं था। यदि बच भी जाता तो उसकी ज़िन्दगी मौत से भी बदतर होती। एक हिजड़े की ज़िन्दगी"।[23]

अजय नावरिया की कहानी **'इज्जत'** में नायिका उषा के साथ जयदेव, सुखबीर और बदन सिंह बलात्कार करते हैं। उन्होंने सोचा कि - "इन नामदरों ने ज़रा भीतर तक मुझे ज़बर्दस्ती छू लिया तो मेरी इज्ज़त कैसे चली गयी। इनकी इज्ज़त इसमें नहीं गयी? मैं कल्ली बनकर नहीं मरूँगी... मैं क्यों मरूँ, ऐसे चुपचाप मरने से ही इनकी हिम्मत बढ़ी है"।[24] उषा ने उन लोगों को बेनकाब किया और सोनिया गांधी को शिकायती पत्र लिखकर उन्हें समाज के सामने लाकर अपना प्रतिशोध की।

ओमप्रकाश वाल्मिकी की कहानी **'अम्मा'** आत्मविश्वास और प्रतिरोध की भावना को दर्शाती है। जब अम्मा पैसे कमाने के लिए श्रीमती चोपड़ा के घर आई तो विनोद अम्मा पर हाथ डालता है, वह उसे झाड़ू से मारती है। और यह कहकर अम्मा अपना विरोध जताती है- "भैण जी, इस हरामी के पिल्ले से कह देणा.....हर एक औरत छिनाल ना होवे है"।[25]

इन सभी कहानियों में दलित स्त्री के उस विद्रोही रूप को दिखाती है, जो अब जुल्म को किसी भी कीमत पर सहन करने को तैयार नहीं है। प्रस्तुत कहानियों में लेखक ने दलित नायिकाओं के द्वारा समाज में एक जागृति लाने का प्रयास किया है।

4.2.4 परिवार में लैंगिक भेदभाव का प्रतिरोध

संविधान में पुरुष और महिला दोनों को समान अधिकार देने का प्रावधान है। लेकिन ये सिर्फ एक कानून बनकर रह गया है। मां के गर्भ में भ्रूण का रूप लेने से लेकर मृत्यु तक बेटियां लैंगिक असमानता के कई आयामों से गुजर रही हैं। बेटे और बेटी का जन्म होना एक सामान्य घटना है, लेकिन अगर गर्भ में बेटी हो तो घर में खुशियों का माहौल खत्म हो जाता है। लड़की के जन्म को बोझ मानने की प्रवृत्ति उसके जन्म लेने के नैसर्गिक अधिकार को छीन लेती है। इस प्रकार समाज में कन्या भ्रूण हत्या की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। हमारे पारिवारिक परिवेश में पुत्र को महत्व देने की प्रवृत्ति आज भी विद्यमान है।

रजत रानी मीनू जी की कहानी **'सुनीता'** में सुनीता के माता-पिता हमेशा उसके प्रति भेदभाव करते हैं। सुनीता ने भारी बहुमत से चुनाव जीतकर महासचिव बनकर समाज और परिवार से अपना प्रतिरोध जताया। और जब पिताजी ने गांव वालों की कुछ जरूरतें सामने रखीं तो उसने कहा "पिताजी मैं क्या कर सकती हूँ? मैं एक लड़की हूँ। यह काम तो आपके बेटे करेंगे, वही वंशचालक है"।[26]

"पिताजी मैंने यह बात आपको नीचा दिखाने के लिए कहीं बल्कि आपको कुछ याद दिलाने के लिए कही है। जब मैं बहुत छोटी थी तो आपने कहा था, 'पढ़-लिखकर क्या करेगी? तुझे कलक्टर-वलक्टर तो बनना नहीं है, और न तू बनेगी ही, वैसे भी वंशचालक तो मेरे बेटे ही है'। वह दिन आपको भी याद है न, पिताजी!"।[27]

यह कहानी न केवल एक दलित महिला की सामाजिक और पारिवारिक स्थिति का बयान है, बल्कि दलित महिला की जीवित रहने की दृढ़ इच्छाशक्ति और उसके संघर्ष का

दस्तावेज भी है। इसीलिए इस कहानी की नायिका सभी बाधाओं को पार कर अंततः अपने इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होती है।

4.3 दलित स्त्री एवं प्रतिरोध - आर्थिक परिप्रेक्ष्य

आज हमारी आर्थिक व्यवस्था पूंजीपतियों के पक्ष में है। इसीलिए अमीर लोग और भी अमीर होते जा रहे हैं और गरीब लोग और भी गरीब होते जा रहे हैं। आज भी लोग रोटी, वस्त्र और आश्रय के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था दलित महिलाओं के जीवन को सबसे अधिक दयनीय बनाती है। बच्चों के प्रति दलित महिलाओं की भावनाएं मातृत्व के साथ उबल रही हैं। इसलिए दलित महिलाओं के लिए आर्थिक अभाव और गरीबी एक बड़ी चुनौती है। आज भी दलित महिलाओं का कई तरह से शोषण किया जा रहा है। पूंजीपति दलित महिलाओं को सस्ते में रखकर उनके श्रम का शोषण कर रहे हैं। लिंग भेदभाव वेतन में असमानता पैदा करता है और उनके साथ काम करने वाले श्रमिकों और ठेकेदारों की बुरी प्रथाओं के कारण उन्हें हमेशा चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वे अपने श्रम क्षेत्र में कभी भी सुरक्षित नहीं होते हैं। उन्हें कई तरह के शारीरिक और मानसिक कष्ट झेलने पड़ते हैं। अपनी मजबूरी के कारण वे वहां की समस्याओं की परवाह किए बिना वहीं रहने को विवश हैं।

4.3.1 शिक्षित और आर्थिक आत्मनिर्भर बनी स्त्री का प्रतिरोध

आज दलित स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं। चार दीवारों के भीतर घुट-घुटकर जीने वाली महिला की हालत बदलने लगी। दिनेश भट्ट की राय में "शिक्षा द्वारा स्त्री व्यवस्थित रूप से पनप रहे दुराचारी वातावरण को दूर कर सकती है। शिक्षा द्वारा महिलाओं में वैचारिक तथा प्रायौगिक बदलाव लाया जा सकता है। पढ़ी - लिखी नारी को सांवैधानिक अधिकारों की जानकारी हो सकती है। जिससे वह पुरुष के साथ संघर्ष में खड़ी हो सके। शिक्षा स्त्रियों को व्यावहारिक जीवन की विपरीत स्थितियों में रहने

मुश्किलों को सहने, लड़ने और अनन्तः उनको अपने अनुकूल बनाने के काबिल बनाती है"।[28] वर्तमान समय में अध्ययनशील दलित महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। इसलिए जब अन्याय होता है तो वह उसका विरोध भी करती है और अधिकार प्राप्त करने का प्रयास भी करती है।

आज शिक्षित महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं। इसलिए जब अन्याय होता है तो वह उसका विरोध करती है और अधिकार प्राप्त करने का प्रयास भी करती है। नामदेव जी की **'चरिता'** कहानी का चरिता ऐसा ही एक पात्र है। चरिता के पति नील ने उसे कुछ पैसे देते हुए कहा - "लो खर्चा, अब घर चलाओं"।[29] चरिता ने पीछे हटते हुए बोली, "बस इतना ही, इससे क्या होगा? घर के हज़ारो ख़र्च होते है, वो सब कैसे पूरा होगा?"।[30]

"वह तो होम लोन का ईएसआई और परिवार की बहुत सारी ज़रूरतों को पूरा करने में ख़र्च हो जाती है। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि बच्चों के स्कूल के फीस, ट्यूशन फीस, बिजली का बिल और घर की अन्य ज़रूरतों को मैं ही पूरा करती हूँ, और तुम थोड़े से रुपये फेंककर हमेशा मर्दानगी की धौंस दिखाते हुए एहसान जताते हो" ।[31] इधर, पति की लापरवाही के कारण चरिता को शिक्षित और नौकरीपेशा होने के बावजूद आर्थिक तंगी झेलनी पड़ रही यहाँ चारिता अपने पति के खिलाफ़ विरोध कर रही है। वह अपने पति के सामने अपनी बात रखकर अपने घर के लिए विरोध जता रही हैं।

टेकचंद की कहानी **'एटीएम'** में ससुराल वालों को सुमित्रा से शिकायत थी कि- "चौधरी स्साब! नौकरी लागी औड़ बहू तै हमनै तै कोई फैदा ना होया..."।[32]

"सारी हाण इस मुबाइल नै कान कै लगाये रहवे सै" ।[33]

सास ने भी बात में पुछल्ला जोड़ा। इसके साथ लड़के की बहन ने परंपरा-निर्वाह का दायित्व निभाने में बोला - "नौकरी तो गाम में और बी बहू लाग रो सै यो सै न्यारी पैंसिपल लाग रही सै?"।[34]

बाद में पति ने भी शिकायत रखी - "हर तीसरे दिन एजुकेशन जोन के नाम पै शहर जाई सै..."।[35]

उसके ससुराल वाले उसके परिवार के सामने उसके बारे में गलत बातें कर रहे थे। पहले तो वो कुछ नहीं बोलीं और बाद में उन्हें बोलना पड़ा। "अब तक जितनी बात हो रही थी सभ मैं मनै दोसी ठहरावै थे..."।[36]

"किसै ने मेरा चाल-चरण अच्छा नहीं लगता... किसे नै मेरा ओढण-पहरण... किसे नै बोलचाल ना भावती...पर ये बात नहीं है... अगर मैं भी गाँव की और बहुओं की तरह चुपचाप नौकरी करती रहूँ और अपणा ए.टी.एम. इनको सौंप दूँ तो किसी तरह का रोणा नहीं है..."।[37]

असल में मामला बहू का चरित्र चित्रण का नहीं था। ससुरालवालों की बर्ताव को बहू ने प्रतिरोध की है उसने चुपचाप नहीं बैठी।

"अपना और अपना घर का ख़र्चा मैं चला लूँगी...बिजली, पानी, गैस सब कर लूँगी... पर अपना ए.टी.एम. किसी को नहीं दूँगी"।[38]

"मैं मर-मर कर कमाऊँ और कमाई पर मेरा हक़ भी नहीं... अपने लिए तो किसान पंचायत मैं सीना ठोक कै कहो हो के 'धरती किसकी? जो बोवे उसकी'। फिर मेरी बारी में दोगली बात क्यू? मेरी मेहनत की कमाई पर मेरा हक क्यूँ न हो? अपना ए.टी.एम., अपनी कमाई मैं किसी को देने वाली नहीं हूँ! चरित्र ख़राब बताओ, न्यारा कर दो या घर से निकाल दो..."।[39]

सुधा आरोडा की राय में "किसी भी लड़की के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता अपने लिए आजादी और इज्जत कमाने की पहली शर्त है। अपने पाँव पर ख़डे होने के लिए सबसे पहली ज़रूरत है शिक्षित होना। शिक्षा के द्वारा ही उसमें आस पास की परिस्थितियों का विश्लेषण और उसमें अपनी 'जगह' की पहचान करने की समझ विकसित होती है। हर समाज में

वर्चस्व का निर्धारण अर्थसत्ता से ही होती है। आर्थिक आत्मनिर्भरता से बहुत सारे समीकरण बदल जाते है"।[40]

दलित स्त्री समाज में अपने ही अस्मिता बनाने को चाहती है। उसके लिए कठिन परिश्रम भी करती है। शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता समस्याओं को प्रतिरोध करने की ताकत स्त्रियों को प्रदान कर रही है। इसप्रकार स्त्रियाँ पुरुष वर्चस्ववादी शोषण तंत्र को समझ कर उसके खिलाफ लड़ने और दूसरों को उसके प्रति सचेत बनाने में सफल हो रही है।

4.3.2 कामकाजी क्षेत्र की पीडाएँ

कामकाजी क्षेत्र में दलित आज भी शारीरिक और मानसिक रूप से अनेक कष्ट झेल रहे हैं। इसमें दलित पुरुषों की तुलना में दलित महिलाएं अधिक पीड़ित हैं। देश में प्राचीन काल से लेकर आज तक ऊंची जातियों का वर्चस्व कायम है। ऊंची जातियों का फैसला ही अंतिम फैसला माना जाता है। दलित स्त्रियों के साथ अधिकतर बलात्कार कामकाजी क्षेत्रों में हो रहे हैं। उन्हें अच्छा काम करने की इजाज़त नहीं है और कार्यस्थल पर भी कोई उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता।

सूरजपाल चौहान की कहानी 'चोट' में रज्जो के साथ भी यही हुआ। उसके अधिकारी जाति-भेद दिखानेवाली पवन शर्मा के आलिंगन से खुद को दूर करती हुई रज्जो चिल्लाकर बताती है -"साले, हरामी..., इतनी देर से..., अपनी अम्मा समझकर ,ठहर, मैं बताती हूँ तुझे..."।[41] प्यार का नाटक करके निचली जाति की भोली-भाली महिलाओं को धोखा देना ऊंची जाति के लड़कों के लिए एक मज़ाक है। यहां रज्जो ने पवन शर्मा को धक्का देकर अपना विरोध जताया है।

'जंगल की रानी' की कमली, प्रह्लाद चन्द दास की 'कजली', 'इज्ज़त' कहानी की उषा, 'हाथ तो उग ही आते है' कहानी की रूक्खो और ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'अम्मा',

'खानाबदोश' में कार्यस्थल पर दलित महिलाओं के शोषण को निम्नलिखित तरीके से दर्शाया गया है। यह प्रस्तुत शोध-अध्या दो में उपलब्ध है।

4.3.3 आवास की समस्या

आवास मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। बच्चों की शिक्षा, साफ़-सफ़ाई, स्वास्थ्य और मनोरंजन आदि अन्य समस्याएँ इनसे जुड़ी हुई है। आज भी दलित समुदाय भोजन, वस्त्र और आवास जैसी जीवन की मूलभूत जरूरतों के लिए संघर्ष कर रहा है। वह दूसरों के लिए भव्य इमारतें बनाने के लिए दिन-रात मेहनत करता है, लेकिन बदले में वह खुद झुग्गियों में रहता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी **'खानाबदोश'** में मानो और सुक्किया का सपना एक जैसा है कि वे पक्की ईंटों का घर बनाएं। लेकिन वे दोनों जहाँ काम करती हैं, वहाँ नहीं रह पातीं और मजबूरन उन्हें नौकरी छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ता है। यह दृश्य का एक हिस्सा है-"उसने मानों का हाथ पकड़ा, 'चल! ये लोग म्हारा घर ना बणने देंगे'। पक्की ईंटों के मकान का सपना उनकी पकड़ से फिसलकर और दूर चला गया था। भट्टे से उठते काले धुएँ ने आकाश तले एक काली चादर फैला दी थी। सब कुछ छोड़कर मानो और सुकिया चल पड़े थे। एक खानाबदोश की तरह। जिन्हें एक घर चाहिए था, रहने के लिए। पीछे छूट गए थे कुछ बेतरतीब पल, पसीने के अक्स जो कभी इतिहास नहीं बन सकेंगे। खानाबदोश ज़िदगी का एक पड़ाव था यह भट्टा"।[42] यहां दोनों जीवन के अगले पड़ाव की तलाश में दिशाहीन यात्रा पर निकल रहे हैं।

4.3.4 आरक्षण व्यवस्था

भारतीय समाज में दलितों और पिछड़े वर्गों के लिए कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है, जिसका कारण उच्च वर्गों का सामंतवाद है। वे कभी भी निचले वर्गों की मुक्ति और उनका सामाजिक और आर्थिक सुधार नहीं चाहते। इसलिए उन्होंने उसे शिक्षा से भी दूर रखा।

उन्नीसवीं शताब्दी तक यह प्रखर रूप में रहा। लेकिन आधुनिक समाज में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप इनमें कुछ बदलाव भी हुए हैं। दलित शिक्षा प्राप्त कर काम करने लगे हैं। आरक्षण नीति ने उन्हें गरीबी से ऊपर उठने में मदद की है। अम्बेडकर और ज्योतिबा फुले ने दलित मुक्तिदाता के रूप में काम किया है। "डॉ. अम्बेडकर ने अपने स्वयं के अनुभवों को देखकर दलितों के सुधार के लिए आरक्षण का महत्व बताया है। आरक्षण के द्वारा इन वर्गों के लोगों की स्थिति को सुधारना चाहते थे"।[43] इन संकल्पों में उन्होंने संविधान में यह बात कही और भारत में दलितों और पिछड़ी जातियों को आरक्षण की सुविधा प्रदान की।

कैलाश वानखेड़े की कहानी **'महू'** में प्रज्ञा के दोस्तों ने यह कहकर उसका उपहास उड़ाया है कि उसे और आरक्षण के कारण कॉलेज में सीट मिलती थी और वह हमेशा जातिगत शोषण का पात्र बना है। यहां तो खुद प्रोफेसर भी निचली जाति के बच्चों को समान दृष्टि से नहीं देखते। उसकी और सहपाठी रागिनी के बीच हुई वार्तालाप से इसका ज़िक्र मिलते है।

रागिनी- "शुडू क्या हाल है?...शुडू, क्या चल रहा है?...शुडू, तुम पढ़ने की तकलीफ़ क्यों उठाती हो? जैसे एडमिशन हो गया है वैसे ही पास हो जाओगी"।[44]

"हायर मार्क्स मिलने के बाद भी मुझे केमिकल नहीं मिला और एक तू है लाडो, जिसे कम मार्क्स लाने पर भी मनचाही फैकल्टी मिल गयी। शुडू, तुम लोगों के कारण दो साल बर्बाद हो गये मेरे। हमारा हक छीनने वाली तेरा क्या करूँ?" ।[45]

इस तरह रागिनी ने प्रज्ञा से हर दिन कुछ ना कुछ शिकायतें की थी तो प्रज्ञा ने भी वापस जवाब देती थी। यहाँ प्रोफसरों और बच्चों सब लोग का दिमाग में जाती के प्रति घृणा है। दलितों आरक्षण में सीट मिलने पर पढाई करके आगे बढ़ रही है। यह आज भी कुछ सवर्ण लोग इसे पसंद नहीं करते।

सूरजपाल चौहान की कहानी 'चोट' आरक्षण व्यवस्था का संक्षिप्त चित्रण करती है। कहानी में रज्जो को उसके पति की चपरासी की नौकरी की जगह सफाईकर्मी की नौकरी मिल जाती है। भारतीय समाज में संविधान में आरक्षण के नियमों के बावजूद दलित शोषण का शिकार हो रहे हैं।

4.4 दलित स्त्री एवं प्रतिरोध -राजनैतिक परिप्रेक्ष्य

आज महिलाएं समाज के हर क्षेत्र में सम्मान के साथ आगे बढ़ रही हैं। वह राजनीति के क्षेत्र में भी अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। स्त्रियों की समस्याएँ अधिकतर समाज से जुड़ी हुई थीं और राजनीति सामाजिक परिवर्तन का माध्यम थी, इसलिए दलित स्त्रियों के प्रतिरोध का एक अनिवार्य प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करके सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्य को पूरा करना था। इस दिशा में राजनीतिक प्रतिरोध किसी की सामाजिक स्थिति को बदलने के संकीर्ण लक्ष्य तक सीमित नहीं था, बल्कि महिलाओं के राजनीतिक प्रतिरोध का लक्ष्य बड़ा माना गया। आज वह अपने सामने आने वाली समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है। अगर कहीं अत्याचार और अन्याय के मामले हों तो वे आज उनका विरोध करने, उनके खिलाफ आवाज उठाने और सच्चाई और न्याय की मांग करने के लिए तैयार हैं। राजनीतिक हिंसा से जुड़े मुद्दे आज न केवल हमारे देश में बल्कि दुनिया के अन्य हिस्सों में भी एक शर्मनाक घटना हैं। कहानीकार इन समस्याओं को पहचानते हैं और मानवता के पैरोकार के रूप में कहानियाँ लिखते हैं। सामाजिक मानस को आतंकित और पंगु बना देने वाली राजनीतिक घटनाओं को हिंदी कहानीकार रचनात्मक धरातल पर वैचारिक तटस्थता और कलात्मक संतुलन के साथ प्रस्तुत कर प्रतिरोधात्मक कदम उठाते नजर आते हैं।

4.4.1 भय और हिंसा की राजनीति का प्रतिरोध

देश के कई गांवों में अभी भी पंचायती राज जोरों पर है। पंचायती राजनीति के तहत आम लोगों को दबाने की रणनीति भी देखी गयी है। मुखिया लोग गांव पर अपना झंडा

फहराने की फिराक में रहते हैं। वे ग्रामीण लोगों के अंधविश्वासों का लाभ उठाकर अपनी शक्ति का पोषण करते हैं।

कुसुम मेघवाल की कहानी **'अंगारा'** में ठाकुर का बड़ा बेटा सुमेर सिंह और उसका चाचा नाथू सिंह दलित परिवार की लड़की जमना के साथ बलात्कार करते हैं। जमना अपने भाई हीरा को पूरी घटना बताती है। जमना से पूरी जानकारी लेने के बाद हीरा ने पास के थाने में ठाकुरों के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करा दी। लेकिन सुमेर सिंह ने मामले को रफा-दफा करने के लिए थाना प्रभारी को भारी रिश्वत दी. सुमेर सिंह के एक रिश्तेदार भी मंत्री थे। वह भी सुमेर सिंह को संरक्षण दे रहा था। अपने साथ मौजूद अफसरों की दबंगई के चलते सुमेर सिंह अन्य साथियों के साथ चमार बस्ती में आया और उन्हें धमकी देने लगा। "अभी क्या हुआ है? अभी तो एक को उठाकर ले गए है, सभी कलियों की बारी अएगी, घबराना मत। अभी बहुत कुछ बाक़ी है। किसी ने हमारे विरुद्ध गवाही दी या ज़बान खोली तो ये बन्दूक़ देख लो, भूनकर रख देंगे। तुम्हारी एक भी औरत नहीं बचेगी, इसलिए ख़ैर इसी में है कि चुपचाप हम जो कहें, वो करते जाओ। हमारे काम में दख़ल मत दो। समझे !"।[46] सदियों से अपमान सहने के आदी चमार कुछ बोल नहीं पाते थे। चमारों की आँखों में ऊँची जातियों के प्रति भय था।

4.4.2 जाति की राजनीति पर उभरता प्रतिरोध

जातिवाद एक मान्यता प्राप्त प्रथा है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। संभवतः जातिवाद मानव समाज को वर्गीकृत करता है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता और क्षेत्रवाद विभिन्न जातियों के बीच पाई जाने वाली नफरत को और भी तीव्र करते हैं। जाति से प्रेरित होकर लोग दूसरी जाति के लोगों का शोषण करने में कोई झिझक महसूस नहीं करते। वर्तमान समय में राजनीतिक लोग जातिवाद का सबसे ज्यादा फायदा उठाते हैं। आज रिश्वत लेना आम बात हो गई है। विभिन्न पदों पर नियुक्त अधिकारी या कर्मचारी अपने पद को

स्थिर करने और प्रमोशन पाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाने लगे हैं। छोटे अधिकारियों द्वारा अपने वरिष्ठ अधिकारियों को तथा वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा वरिष्ठ अधिकारियों को धन, वस्त्र, वाहन, स्त्री आदि समर्पित करके संतुष्ट करना एक परंपरा बन गई है। महिलाओं का व्यापार रिश्वत के रूप में भी किया जा रहा है। आदिवासी और दलित महिलाओं को भी सस्ती और भ्रष्ट लोकतांत्रिक राजनीति का शिकार बनाया जा रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'जंगल की रानी' की कमली में इस क्रूर राजनीति के खिलाफ प्रतिरोध और प्रतिशोध की भावना जागृत होती दिखती है- "संघर्ष चरम सीमा पर था। डिप्टि साहब हाँफने लगे थे। कमली ने विधायक जी को पटखनी देकर फर्श पर गिरा लिया था। छाती पर चढ़कर पंजों से विधायक जी की गर्दन दबोच ली थी। विधायक जी की आखें साक्षात् मृत्यु दर्शन कर रही थी"।[47] सत्ता की स्त्री भूख के खिलाफ प्रतिरोध करती स्त्री कमली के रूप में सामने है। चुनाव के समय जातिवाद का हठधर्मिता दिखाकर जनता को मूर्ख बनाते हैं और अपना हित साधने में सफल हो जाते हैं। आज दलित समाज जातिगत राजनीति के दलदल में फंसा हुआ है। राजनेता दलित वर्ग के उत्थान के लिए भाषण और वादे करते हैं, लेकिन वे स्वयं पूंजीपतियों और सत्ता में बैठे लोगों के इशारे पर और अपने जाति समुदाय के लोगों के लिए काम करते हैं। यही हाल आज पंचायती राज का भी है। ओमप्रकाश वालमीकि जी का 'यह अंत नहीं' कहानी की बिरमा इसी राजनीतिक व्यवस्था पर वार करती है- "किसन भैया ठीक कहते थे पंचायत में नियाय न होता, जात-बिरादरी देखी जावे है। गुंडागर्दी होती हैपंचायत के नाम पे.."।[48]

4.4.3 वोट की राजनीति

हमारे देश में अधिकतर ऊंची जाति के नेता दलितों को केवल वोट बैंक के रूप में देखते हैं। वे यह भी जानते हैं कि आबादी में दलित अधिक हैं और उनके बिना वे चुनाव नहीं जीत पाएंगे। इसीलिए वे चुनाव से कुछ दिन पहले दलित बस्तियों में जाते हैं, उनसे झूठे वादे करते हैं और उन्हें नई सुविधाओं का लालच देते हैं। जब दलित इसे स्वीकार नहीं

करते तो उन्हें प्रलोभन दिया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मिकी जी की कहानी **'जंगल की रानी'** में डिप्टी साहब, एसपी और एमएलए साजिश रचकर कमली की हत्या कर देते हैं। कमली की हत्या की जांच के कारण नया सवेरा का संपादक सोमनाथ की भी हत्या कर देता है। अगले दिन गांधी चौक पर एक विशाल भीड को संबोधित करते हुए विधायक जी ने संपादक के हत्यारों को सजा दिलाने की शपथ भी लेती है। राजनीति में लोग अपने अस्तित्व के लिए कुछ भी कर सकते हैं और कह सकते हैं।

4.5 दलित स्त्री एवं प्रतिरोध -धार्मिक - सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

हिंदी दलित कहानियों में समाज के धार्मिक-सांस्कृतिक पहलुओं का व्यापक चित्रण किया गया है। दलित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक आदि विभिन्न जीवन स्थितियों की तरह धार्मिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का भी बहुआयामी एवं विस्तृत चित्रण किया गया है। हिंदी दलित कहानियों में वर्णित धार्मिक प्रवृत्तियाँ दलितों के अंधविश्वासों और उनकी अटूट आस्था को दर्शाती हैं। धार्मिक आडम्बरों की ओर झुकाव केवल दलित वर्ग में ही नहीं, बल्कि मनुष्य के हर वर्ग में है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में धार्मिक प्रवृत्तियों ने गहरी एवं अमिट छाप छोड़ी है। इनमें से कुछ धार्मिक गतिविधियाँ हमारे मूल्यों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन कुछ अंधविश्वास, जैसे जादू-टोना आदि मानव जीवन को अंधकार में धकेल देते हैं, क्योंकि इन प्रवृत्तियों का कोई वास्तविक आधार नहीं है। दलित वर्ग समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबरों का अधिक शिकार है। हमारे जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक हर कदम पर एक धार्मिक अनुष्ठान होता है। कुछ अनुष्ठान हमारे जीवन को खुशहाल बनाते हैं, लेकिन कुछ अनुष्ठान हमें न चाहते हुए भी करने पड़ते हैं। दलितों में धार्मिक चेतना का चित्रण करने वाली कुछ दलित कहानियों में धार्मिक भेदभाव, अंधविश्वास, उच्च वर्ग द्वारा दलित वर्ग के धार्मिक शोषण की प्रवृत्ति आदि पर चर्चा करना आवश्यक है।

हिन्दू धर्म के अनुसार स्त्री सदैव अपवित्र रही है, स्त्री का जन्म ही अपवित्र माना जाता है। अत: हिन्दू धर्म एवं दर्शन के अनुसार महिलाओं को किसी भी प्रकार का धार्मिक सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं है। कहानियों के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए मनुष्य और संस्कृति के पारस्परिक संबंध और प्रभाव तथा संस्कृति और साहित्य का विश्लेषण उपयुक्त प्रतीत होता है। संस्कृति वह आधार है जिसके आधार पर एक ओर मनुष्य के कार्यों का उदात्तीकरण होता है, वहीं दूसरी ओर संस्कृति के नाम पर समाज में ऐसी प्रथाएँ विद्यमान हैं, जिन्हें सीखना और अपनाना मनुष्य और समाज के लिए अहितकर है। इससे समाज में अव्यवस्थाएं एवं वक्रता आती हैं। ये ऐसे तत्व हैं जहां भेदभाव, ऊंच-नीच, मान-अपमान होता है और इनकी प्राप्ति गुण, कर्म पर नहीं बल्कि वंशानुक्रम पर आधारित होती है। धर्म और अध्यात्म भारतीय समाज और संस्कृति की आत्मा रहे हैं। इस सन्दर्भ में वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा लिखते हैं- "भारतीय विचारों का प्रारंभ से ही मानना रहा है कि इस स्थूल संसार से परे भी कोई अदृश्य सत्ता है जिससे जीवन व शक्ति प्राप्त करके यह प्रकृति फल-फूल रही है। इसी विचारधारा ने आध्यात्मिकता की भावना को बढ़ावा दिया है"।[49]

इसे धर्म आधारित संस्कृति भी कह सकते है। यह इंगित करता है कि मनुष्य अपने नैतिकता और विचारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करता है, इसे संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति जीवन जीने का तरीका है, लेकिन भारत में कई धर्मों और जातियों के लोग रहते हैं। अत: यहां सांस्कृतिक विविधता दृष्टिगोचर होती है।

4.5.1 रीति रिवाज़, अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों के प्रति - प्रतिरोध

रिवाज की उत्पत्ति स्थानीय लोक कथाओं, संस्कृति, अंधविश्वास, जीवनशैली, खान-पान आदी पर आधारित है। वस्तुतः लोगों की ज़िदगी से संबंध रखने वाला काम रिवाज होता है। यह रिवाज एक जगह या वहाँ के लोगों के लिए आम होता है। जैसे खाने के वक्त

लोगों का व्यवहार कैसा होना चाहिए और उन्हें दूसरों के साथ किस तरह पेश आना चाहिए, कपड़े कैसे पहनना चाहिए और क्या खाना चाहिए। जैसे राजस्थान में धोती और पगड़ी पहनने का रिवाज़ है तो तमिलनाडु में धोती या लुंगी। हालाँकि, कई ऐसे रीति-रिवाज हैं जो पौराणिक कहानियों के आधार पर समाज में प्रचलित हो जाते हैं। कई रीति-रिवाज ऐसे हैं जो हिंदू शास्त्रों के अनुसार सही नहीं हैं, जैसे सती प्रथा, दहेज प्रथा, मूर्ति स्थापना और विसर्जन, माता की चौकी, अनावश्यक व्रत और कथाएँ, पशु बलि, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, छुआछूत, ग्रह-नक्षत्रों की पूजा, मृतकों की पूजा, अधार्मिक तीर्थ और मंदिर आदि। अधिकांश रीति-रिवाजों को धर्म से जोड़ना सही नहीं है। अधिकांश रीति-रिवाज अंधविश्वास हैं जो हजारों वर्षों की परंपरा, डर और व्यापार के कारण समाज में प्रचलित हो गए हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव और पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों आदि के कारण अंधविश्वास की समस्या उत्पन्न होती है। अगर दलित महिलाएं अशिक्षित हैं, तो अंधविश्वास की समस्या गंभीर रूप ले लेती है।

जयप्रकाश कर्दम लिखते है कि- "एक और जहाँ समाज में दलित के प्रति उपेक्षा का भाव है तथा उनका शोषण करने की प्रवृत्ति है, वहीं अपने स्वार्थ पूर्ती के लिए दलितों का इस्तेमाल भी खूब किया जाता है और सब से उल्लेखनीय बात यह है कि सामान्य व्यवहार में जिन दलितों के साथ अस्पृश्यता बरता जाता है। स्वार्थ सिध्दि के अवसरों पर अस्पृश्यता महत्वहीन हो जाता है। दक्षिण भारत के मंदिरों में देवदासी प्रथा के नाम पर पूजारियों के द्वारा दलित स्त्रियों के साथ किये जाने वाले बलात्कार इस मानसिकता के ज्वलंत उदाहरण है"।[50]

सुशीला टाकभौरे जी की कहानी **'छौआ माँ'** में गाँव वालो के कहना है कि - "तो का हो गओ? जचकी का काम बेटी से करा ही लियो तो का हो गओ?...वा क्यों नहीं करेगी तेरी काम? जो तू करती आई है, वही तेरी मोड़ी करेगी। जो तुमरो कर्म है वही तुमरो धरम है।

गन्दगी उठाने के काम तुमरी जात के लोग ही करे है"।[51] दलित बच्चों को वही काम करना चाहिए और वही रीति-रिवाजों और परंपराओं का पालन करना चाहिए जो उनके माता-पिता करते हैं। छोआ मां इस विचारधारा का विरोध करती हैं।

सुशीला टाकभौरे की कहानी **'मेरा समाज'** में अंधविश्वास से ग्रसित दलितों का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि- "बिल्ली ने रास्ता काट दिया तो अशुभ, कौए ने पंख मार दिया तो अशुभ- ऐसी अनेक बातें मानी जाती है। किसी के शरीर में देव भूत का आना भी विश्वास के साथ सच माना जाता है"।[52]

यह सब समाज में शिक्षा और जागरूकता की कमी के कारण हो रहा है। दलित लोग अपने बच्चों की शिक्षा के बारे में ज्यादा नहीं सोचते। वे धर्म और कर्मकांड में ज्यादा विश्वास करते हैं। यही कारण है कि दलित अंधविश्वास से ग्रसित हैं। हमें अंधविश्वास की बजाय अपने मन में आत्मविश्वास पैदा करना चाहिए। इससे हमें आगे बढ़ने और संघर्ष करने की ताकत मिलती है। भारत में आज भी अंधविश्वास को मानने वालों की संख्या कम नहीं है। ब्राह्मण वर्ग द्वारा बनाए गए नियम, जो विशेष रूप से उन्हीं के लिए बनाए गए हैं, उनका पालन वे आज भी उसी मूर्खता से करते हैं जैसे पुराने जमाने में उनके पूर्वज किया करते थे।

4.5.2 अस्पृष्यता एवं धार्मिक आडंबर

हमारे भारतीय समाज में लोग धार्मिक प्रवृत्ति की ओर अधिक भागते हैं। दलित समाज में धार्मिक आडंबर भी बहुत है। लोग पूजा-पाठ, यज्ञ, दान आदि धार्मिक कार्यों को न केवल अपना कर्तव्य मानते हैं बल्कि एक परंपरा भी मानते हैं, जो उनके पूर्वजों के जमाने से चला आ रहा है। ये लोग इन धर्मों के खिलाफ कुछ भी कहने वाले की बात सुनने से इनकार कर देते हैं। है। उन्हें इन धार्मिक आडंबरों और उनकी शक्तियों पर अंध विश्वास है।

ओमप्रकाश वाल्मिकी द्वारा लिखित कहानी **'ग्रहण'** में चौधरी की बहू बांझ थी। गलती बेटे की थी, लेकिन दोष बहू पर लगा दिया गया। चौधरी धार्मिक आडम्बर के अधीन थे। वे इलाज नहीं बल्कि पूजा करते हैं। इस दृश्य की एक झलक नीचे प्रस्तुत है- "देवी-देवताओं की मन्नतें माँगी गई, पण्डे-पूजारियों को दान-दक्षिणा दी गई, मुल्ला-मौलवियों के गण्डे-ताबीज बाँधे गये, फिर भी बिरम की बहू बंजर धरती की तरह ज्यों-की-त्यों सुनी ही बनी रही"।[53]

उनकी कहानी **'बिरम की बहू'** में एक दृश्य ऐसा है, जहाँ बताया गया है कि पण्डित धार्मिक प्रवृत्तियों के द्वारा ही बेवकूफ बनाकर लोगों से धन ऐंठते रहते है। इस दृश्य की एक झलक नीचे प्रस्तुत है। बहू के पाँव भारी जानकर चौधरी ने पूजा-पाठ कराया। इसी का वर्णन प्रस्तुत है -" चौधरी ने पण्डित सियाराम को बुलाकर दान-दक्षिणा दी थी। पण्डित ने मन्दिर में बड़ा-सा अनुष्ठान कराया था। हवेली से पण्डित सियाराम की आमदनी का रास्ता फिर खुल गया था"।[54]

4.5.3 भाग्य (नियति)

हिंदी दलित कहानियों में चाहे उच्च वर्ग हो या निम्न वर्ग, वे स्वयं को भाग्य पर निर्भर मानते हैं। दलित अपनी नारकीय जिंदगी जीने की मजबूरी को अपनी नियति मानते हैं. गुलामी और शोषण को ही अपनी नियति समझकर वे थके और निराश रहते हैं। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि संघर्ष के जरिए इंसान अपनी किस्मत बदल सकता है। इन दोनों प्रकार की सोच वाले लोगों के बीच नियति को लेकर संघर्ष चलता रहता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी **'ग्रहण'** में चौधरी की बहू की गोद सूनी रहती है, तो वहाँ भी सब इसे भाग्य का ही दोष मानते है। इसी दृश्य की एक झलत प्रस्तुत है- पास-पड़ोस की औरतों भी बातचीत करने के लिए विषय मिल गया था- "अरे बेचारी की किस्मत खराब है। इतना रूप-रंग दिया....., पर कोख खाली ही दी"।[55]

सुशीला टाकभोरे की कहानी **'छौआ माँ'** में दलित जाति की छौआ माँ (दाई) के कई बच्चे थे, लेकिन सभी मर गये। केवल एक लड़की (तुलसा) बची थी। छौआ माँ इसे अपने भाग्य का दोष मानती थी। इस दृश्य की एक झलक नीचे प्रस्तुत है- "बड़ी की शादी करी। हीरा जैसो जवाँई मिलो। मगर देखो, किस्मत का खेल-शादी के बाद बेटी को चेचक निकली। चेचक माता का बुखार बा के सिर पर चढ़ गयो और बा भी नहीं रही। किस्मत में ही नहीं थी तो क्या करें? बस यही बची है तुलसा"।[56]

उनकी कहानी **'जन्मदिन'** में दलित जाती का मुन्ना पढ़ता था। वह अपने वर्ग के लोगों के दलित जीवन को बदलना चाहता था। मुन्ना दलित जीवन की पीड़ा को सोचता है, इसी दृश्य की एक लघु झलक प्रस्तुत है-"बात-बात में झिड़की, अपमान, गालियाँ ही इन्हें मिलते है, जिससे वे अपने आत्म-सम्मान को भी भूल गये। शिक्षित सभ्य समाज से अलग-थलग रहने के कारण जैसे उनकी दुनिया ही अलग हो गई। वहाँ रहकर न वे लोग कुछ सोच पाते है और न ही कर पाते है। सदियों की परम्परा को वे अपनी नियति, अपना भाग्य मान बैठे है"।[57]

कावेरी की कहानी 'सुमंगली' में मजदूर और अनाथ सुगिया का एक ठेकेदार शोषण करता है। उनकी शादी मजदूर दुखना से हुई है। दुखना उसके साथ हो रहे अत्याचार को समझता था। वह सुगिया का बहुत आदर करता था। सुगिया भी दुखना के साथ खुश थी, लेकिन किस्मत सब कुछ छीन लेती है। इस दृश्य की एक झलक प्रस्तुत है - "दुखना के साथ सुगिया के गृहस्थी की गाड़ी बडे मजे से दौड़ती जा रही थी, पर अभागे का सौभाग्य शायद भगवान को भी नहीं सुहाता। अचानक सुगिया के सिर पर पहाड़ गिर पड़ा। सुगिया पथराई आँखो से पल भर खून से लथपथ निरिजीव शरीर को देखती रही"।[58]

4.5.4 देवदासी प्रथा

देवदासी एक ऐसी लड़की को दिया जाने वाला नाम है जो अपने जीवन के बाकी समय के लिए किसी मंदिर में देवता की पूजा और सेवा के लिए 'समर्पित' होती है। यह

दक्षिणी और पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों में प्रचलित था। लड़की का समर्पण विवाह के समान एक समारोह में होता है और इसे 'पोट्टुकट्टू' कहा जाता है। यह परंपरा छठी शताब्दी से चली आ रही है, जहाँ छोटी लड़कियों की शादी देवता से कर दी जाती थी, जिसके बाद वे मंदिर की देखभाल करती थीं और देवता के सम्मान में नृत्य और संगीत सहित सभी अनुष्ठान करती थीं। मूल रूप से, लड़कियाँ मंदिर की देखभाल करने और अनुष्ठानों में भाग लेने के अलावा भरतनाट्यम, ओडिसी या अन्य शास्त्रीय नृत्य कलाओं को सीखती और उनका अभ्यास करती थीं। पारंपरिक रूप से उन्हें समाज में उच्च दर्जा प्राप्त था क्योंकि संगीत और नृत्य मंदिरों में पूजा का अभिन्न अंग थे। उन्हें शुभ माना जाता था क्योंकि वे देवता के प्रति समर्पित थीं। धार्मिक स्थल के पुजारी इस प्रथा में शामिल महिलाओं के साथ शारीरिक संबंध बनाने लगे और उनका कहना था कि इससे उनके और भगवान के बीच संबंध स्थापित होता है। असल में देवदासी प्रथा ब्राह्मणवाद की एक घृणित प्रथा है जिसमें उत्पीड़ित, गरीब और पिछड़ी लड़कियों की शादी मंदिर के देवताओं से कर दी जाती है और फिर जिस घृणित जीवन को वे जीने को मजबूर हैं, वह अवर्णनीय है। प्रेम कपाडिया की **'हरिजन'** में हरिजन जाति का प्रेम अपनी माँ के देवदासी- प्रथा से जुडे जीवन को देख चुका था। वह पुलिस का बड़ा अफसर बनकर इस धर्म की आड़ में चल रही कुप्रथा का अन्त करना चाहता था। प्रेम को मिले आदेश में इसी धार्मिकता की आड़ में चल रहे शोषण का अन्त करने का ज़िक्र किया गया है। इसी दृश्य की झलक प्रस्तुत है - प्रेम के ससुर कहते है- "मेरा तुम्हें वहाँ भिजवाने के पीछे एक मकसद है। मध्य प्रदेश के तमाम बडे मन्दिरों में आज भी देवदासियाँ बनायी जा रही है.....व्यवस्था और शासन सभी लोग इन गरीब हरिजन महिलाओं का शोषण करते है.....देवदासियों की जिन्दगी से तुम परिचित हो.....मैं चाहता हूँ, तुम वहाँ जाकर इस देवदासी प्रथा का सफाया कर दो"।[59]

4.5.5 प्रथाओं एवं परंपराओं के प्रति - प्रतिरोध (सांस्कृतिक)

रीति-रिवाज, प्रथाएँ और परंपराएँ किसी भी समाज की संस्कृति के आवश्यक अंग हैं। विचारों, मान्यताओं और आचार्य व्यवस्था के अनेक घटक किसी समाज की पहचान का मजबूत आधार बनते हैं। हालाँकि यह सच है, लेकिन यह सवाल महत्वपूर्ण है कि समाज के विभिन्न वर्गों की सांस्कृतिक स्थितियों में इतना अंतर क्यों है। उनके रीति-रिवाजों और परंपराओं में इतनी भीड़ क्यों है? सिर्फ अलग ही नहीं, भेदभाव से इतना फर्क क्यों है। इनके कारण सामाजिक व्यवस्था बनाने वाले प्राचीन ग्रंथों में पाए जा सकते हैं। इसका उदाहरण मनुस्मृति जैसा लिया जा सकता है। समाज में अनेक प्रकार से भेदभावपूर्ण एवं असमान व्यवस्था का बीजारोपण हो चुका है। व्यक्ति के जन्म लेते ही उस पर भेदभावपूर्ण नियम-कायदों का लबादा थोपा जाने लगता है। इसमें आदमी के नामोल्लेख से लेकर उसकी मृत्यु तक विभिन्न गतिविधियों में असमान व्यवस्था की गई है। जिसका एकमात्र उद्देश्य समाज के किसी विशेष वर्ग को लाभ पहुंचाना तथा प्रबल वर्ग के स्वार्थ के अनुरूप व्यापक जनता पर शासन करना हो सकता है। समीक्षाधीन कहानियों में दलित महिलाओं की जीवन व्यवस्था में शामिल कई रीति-रिवाजों और गतिविधियों को शामिल किया गया है, जिसके आधार पर पता चलता है कि कई रीति-रिवाज ऐसे हैं जो जीवन को समस्याग्रस्त बनाते हैं।

पूरन सिंह ने अपनी कहानी **'आरथी'** में पति की मौत के बाद किए जाने वाले पिंडदान और अन्य विभिन्न अनुष्ठानों की समस्या को समझाया है। कहानी में गंगादेई ने अपने पति की मृत्यु पर रीति-रिवाजों का पालन नहीं किया, जिसके कारण उसे अपने रिश्तेदारों और समुदाय के सदस्यों की नाराजगी और कठोर शब्दों का सामना करना पड़ा। अपने बच्चे और गाँव वालों से गंगादेई कहती है -"तुम में से जाइ जादो परेशानी होय बा मेरे आदिमी की अर्थी के साथ न जाये। उनकी चिता को अग्नि तो मैं ही देऊँगी। रही बात बेद-पुरान की तो जे पुरान सिर्फ मेरे लेई है? इन दोनों के ले नाई?"।[60]

यहां गंगादेई की सोच यह है कि जो बच्चे अपनी जिम्मेदारियों से भागते हैं उन्हें मेरे पति की शवयात्रा क्यों करना पड़ रहा है? हमारे समाज में आज भी रीति-रिवाजों और परंपराओं के नाम पर सही और गलत को अंजाम दिया जाता है और उनका आंख मूंदकर पालन करना ही बेहतर समझा जाता है। दलित महिलाओं को अपने जीवन में पुरुषों की उपमा में ज्यादा समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सामाजिक व्यवस्था में बदलाव लाने में शिक्षा अहम भूमिका निभाती है, लेकिन दलित समाज में बेटे बेटियों से बेहतर हैं। इस प्रकार की भावना सभी वर्ग विशेष में विद्यमान है। बेटियां तो पराया धन होती हैं। उन्हें तो ससुराल में जाकर रहना है। इस तरह की परंपरा हमारे समाज में सदियों से मौजूद है। नामदेव जी की **'चरिता'** कहानी में एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार में आठ भाई-बहनों वाले कुनबे में सबसे छोटी थी चरिता। परिवार के संस्कार ऐसे थे कि जब वह आठवीं कक्षा में थीं तभी उनके लिए रिश्ते आने लगे। माँ कहती थी - "चरिता अब सयानी हो रही है। अब जल्दी से इसका विवाह कर देना चाहिए। लड़की जात, कोई ऊँच-नीच हो गयी तो हम कहाँ मूँह दिखायेंगे?"।[61]

उसकी भाई लोग भी माँ के साथ कहती है "बिल्कुल माँ इसका विवाह कर देना चाहिए, हम लड़का ढूढ़ते है"।[62]

चरिता सबसे यह कहकर लड़ती है कि वह शादी नहीं करेगी, उसे पढ़ाई करनी है। यहां लड़की को पढ़ने के लिए लड़के के घर जाना पड़ता है, लड़की का कर्तव्य है अपने पति की सेवा करना। चरिता ने इस विचार का विरोध पढ़ाई करके ही किया है। यह भावना दलित समुदाय की पारंपरिक सोच को दर्शाती है कि उन्होंने अपनी स्थिति को अपनी नियति मान लिया है और उससे बाहर नहीं आना चाहते हैं। दलित महिलाओं के जीवन में ऐसे कई रीति-रिवाज और परंपराएं प्रचलित हैं। इससे उनके जीवन की जटिलताएं और भी बढ़ता है। इसके अलावा बड़ी बात यह है कि उन्हें आज तक इस बात का ठीक से ज्ञान नहीं है कि उनके साथ जो कुछ भी होता है वह अन्यायपूर्ण और निष्प्रयोजन है।

4.5.6 खान-पान एवं रहन सहन की स्वीकृति (सांस्कृतिक)

दलित वर्ग के खान-पान एवं जीवन स्तर में काफी पिछड़ापन है, जिसमें व्यापक संशोधन की आवश्यकता है। कई जगह तो हालात बेहद ख़राब भी हो गए हैं. इसके लिए कई कारण हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा का अभाव, आर्थिक बदहाली, सांसारिक भेदभाव आदि। खराब आर्थिक स्थिति के कारण, एक ओर जहां उनके लिए उत्तम जीवन स्तर के लिए संसाधन जुटाना संभव नहीं है, दूसरी ओर, प्राचीन वास्तुशिल्पीय सामाजिक व्यवस्था ने उनके खराब जीवन स्तर का समाधान खोजने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ऐसे कई उदाहरण हैं जो दलित समाज के खान-पान और रहन-सहन की स्थिति को दर्शाते हैं। वर्ण व्यवस्था के कारण परिश्रम को वर्ण और जाति के आधार पर विभाजित किया गया था जिसमें ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था और दलितों को उनकी सेवा करनी पड़ती थी। दलित समाज को उन्नत तीन वर्गों की तामील करने का आज्ञा दिया गया था। ऐसा माना जाता था कि अगर वे ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें मोक्ष नहीं मिलेगा। ऐसे धार्मिक प्रतिबंधों के कारण उनका शोषण करना आसान हो गया। अत: अशिक्षा एवं धन संबंधी अभाव के कारण दलित समाज का खान-पान और रहन-सहन अत्यंत ख़राब है। इस प्रकार सारांश में कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था और दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण दलित समाज और दलित महिलाओं का रहन-सहन और खान-पान बहुत ख़राब रहा। इसी हीनता के कारण उच्च समाज उन्हें हेय दृष्टि से देखता रहा। उन्हें बार-बार असभ्य, अस्पृश्य और अस्पृश्य करार दिया जाता रहा है, जबकि उन्हें इस स्थिति तक पहुंचाने का कारक भी यही उच्च समाज है।

4.5.7 स्थानीय-बोली भाषा की स्वीकृति (सांस्कृतिक)

भाषा की स्थिति व्यक्ति की शिक्षा, आर्थिक शक्ति तथा उसके परिवार एवं वातावरण की पूर्व स्थिति पर भी निर्भर करती दलित समाज को शिक्षा के अधिकार से वंचित करके उनके बौद्धिक विकास का मार्ग अवरुद्ध कर दिया गया, जिससे उनका भाषायी विकास नहीं

हो सका। एक ओर जहां समाज के एक वर्ग को शिक्षित हुए हजारों वर्ष बीत गये, वहीं दूसरी ओर दलित वर्ग में अभी भी शिक्षा का समुचित विस्तार नहीं हो सका है। यही वजह है कि अन्य वर्गों की तुलना में उनकी भाषा संस्कृति अभी भी विकसित नहीं हो पाई है।

जैसे टेकचंद की 'ए.टी.एम' कहानी से- "हमने तै बेरा भी कोना चालता अक कित तनखा गयी..."।[63] अधिकांश हिंदी दलित कहानियों में स्थानीय बोली का प्रयोग कम देखने को मिलता है।

निष्कर्ष

हिंदी दलित कहानियाँ दलितों के करुण क्रंदन और उनके विरुद्ध होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उनके क्रोध और प्रतिरोध को दर्शाती हैं। दलित जीवन पर केन्द्रित कहानियाँ एक अलग तरीके से झिरझिरापन उत्पादन करते हैं। इन कहानियों में प्रतिरोध थोपा नहीं गया है क्योंकि ये रचनाएँ यथार्थ के बहुआयामी प्रसंगों से जुड़ी हैं। इन कहानियों में दलितों का सामाजिक जीवन जाति व्यवस्था, ऊंची जाति, छुआछूत और सामंतवादियों तथा उच्च वर्गों द्वारा स्त्री-पुरुष के बीच भेदभाव पर आधारित है। आज भी हम बेटे-बेटियों के बीच होने वाले मतभेदों को दूर करने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाए हैं। शोषण, शिक्षितों की थोपी गई मानसिकता आदि विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए दलितों के बीच व्यक्त हो रहे प्रतिरोध को दर्शाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामशरण जोशी, प्रतिरोध की विरासत और वैश्विक पूँजी का प्रबुत्व, पृ.23
2. सिंह अनुराधा, ल्हासा का लहू, निर्वासित तिब्बती कविता का प्रतिरोध, वाणी प्रकाशन, 2021, पृष्ठ -154
3. सक्सेना, प्रगति, "पूर्वजों ने भी उठाई थी साहित्य में प्रतिरोध की आवाज" समतामार्ग, 26 दिसंबर 2021, पृष्ठ 3
4. अर्चना वर्मा, प्रतिरोध का साहित्य, कथादेश, फरवरी 2024, पृ.5
5. ललित कार्तिकेय, आलोचना, जुलाई-दिसंबर 2002, पृ.42
6. समकालीन साहित्य में प्रतिरोध, पृ.244
7. डॉ. वैशाली देशपांडे, स्त्रीवाद और हिन्दी महिला उपन्यासकार, पृ.44
8. हेमलता महिश्वर, करका मन का डारिके, पृ.135, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
9. हेमलता महिश्वर, करका मन का डारिके, पृ.135, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
10. हेमलता महिश्वर, करका मन का डारिके, पृ.135, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
11. हेमलता महिश्वर, करका मन का डारिके, पृ.135, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
12. क्षमा शर्मा, सत्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पृ.60
13. कुसुम मेघवाल, अंगारा, पृ.142, दलित कहानी संचयन एवं संपादन, रमणिका गुप्ता,साहित्य अकादमी
14. कुसुम मेघवाल, अंगारा, पृ.142, दलित कहानी संचयन एवं संपादन, रमणिका गुप्ता,साहित्य अकादमी

15. कुसुम मेघवाल, अंगारा, पृ.142, दलित कहानी संचयन एवं संपादन, रमणिका गुप्ता,साहित्य अकादमी
16. कुसुम मेघवाल, अंगारा, पृ.142, दलित कहानी संचयन एवं संपादन, रमणिका गुप्ता,साहित्य अकादमी
17. पूरन सिंह, अरथी. पृ.243, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
18. पूरन सिंह, अरथी. पृ.247, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
19. दीपा, जीत, पृ.291-292, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
20. अरविंद जैन, बचपन से बलात्कार , पृ.64
21. प्रहलाद चंद दास, कजली, पृष्ठ.74, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
22. दलित कहानी संचयन एवं संपादन, रमणिका गुप्ता, पृ. 141
23. कुसुम मेघवाल, अंगारा, पृष्ठ.145, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन
24. अजय नावरिया, इज्ज़त, पृ.159, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
25. मनुष्यता का दावा करती कहानियाँ, जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य समग्र परिदृश्य,पृ.128
26. रजत रानी मीनू, सुनीता,पृ.34, हम कौन है, वाणी प्रकाशन
27. रजत रानी मीनू, सुनीता, पृ.34, हम कौन है, वाणी प्रकाशन
28. दिनेश भट्ट, नई सदी बाजार समाज और शिक्षा, पृ. 93

29.नामदेव, चरिता, पृ. 248, , रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

30.नामदेव, चरिता, पृ. 248, , रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

31.नामदेव, चरिता, पृ. 248, , रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

32.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 231, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

33.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 231, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

34.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 231, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

35.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 231, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

36.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 236, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

37.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 236, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

38.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 237, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

39.टेकचन्द, ए.टी.एम, पृ. 237, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

40.सुधा आरोड़ा, आम औरत ज़िन्दा सवाल, पृ.98

41. सूरजपाल चौहान, चोट, पृ.40, , रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
42. ओमपेरकाश वाल्मीकि, खानाबदोश, पृ. 132, सलाम, प्रथम संस्करण 2004, राधाकृष्ण प्रकाशन
43. राजू जी, उपन्यासकार सत्यप्रकाश के उपन्यासों में दलित समस्याएँ, प्रकाशक जवाहर पुस्तकालय, पृ-21-22
44. कैलाश वानखेडे, महू, पृ. 118, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
45. कैलाश वानखेडे, महू, पृ. 119, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन
46. कुसुम मेघवाल, अंगारा, पृष्ठ-144, रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, साहित्य अकादमी द्वारा पेरकाशित
47. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिए, पृ.100
48. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिए, पृ.18
49. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ.47
50. कथाक्रम, अप्रैल,जून, 2024
51. सुशीला टाकभौरे, छौआ माँ, पृष्ठ-72, कथारंग सुशीला टाकभौरे की सम्पूर्ण कहानियाँ, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
52. सुशीला टाकभौरे, मेरा समाज, पृष्ठ.130, कथारंग संपूर्ण कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2022, प्रलेक प्रकाशन
53. ओमप्रकाश वालमीकि, ग्रहण, सलाम(कहानी संग्रह), पृ.641
54. ओमप्रकाश वालमीकि, बिरम की बहू, सलाम(कहानी संग्रह), पृ.741
55. ओमप्रकाश वालमीकि, ग्रहण, सलाम(कहानी संग्रह), पृ.641

56.सुशीला टाकभौरे, छौआ माँ, संघर्ष(कहानी संग्रह), पृ.771

57.सुशीला टाकभौरे, जन्मदिन, संघर्ष(कहानी संग्रह), पृ.371

58.रमणिका गुप्ता, सुमंगली, दलित कहानी संचयन में कावेरी की कथा, पृ.1281

59.रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन में प्रेम कपाडिया की कथा, हरिजन, पृ.861

60.पूरन सिंह, आरथी, पृ.247, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

61.नामदेव, चरिता, पृ.249, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

62.नामदेव, चरिता, पृ.249, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023

63.टेकचंद, ए.टी.एम, पृष्ठ.232, रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केंन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2023, वाणी प्रकाशन